



अध्याय १७

श्रद्धात्रय विभाग योग

अर्जुन उवाच ।
ये शास्त्रविधिमुत्सृज्य यजन्ते श्रद्धयान्विताः ।
तेषां निष्ठा तु का कृष्ण सत्त्वमाहो रजस्तमः ॥ १७-१ ॥

अर्जुन ने कहा - हे कृष्ण, जो लोग श्रद्धा से अराधना करते हैं किंतु वेदों के नियमों का पालन नहीं करते, उनका क्या स्थान है? इस तरह की उपासना को किस प्राकृतिक गुण में समझा जाता है - सत्त्वगुण में, रजोगुण में या तमोगुण में?

श्रीभगवानुवाच ।
त्रिविधा भवति श्रद्धा देहिनां सा स्वभावजा ।
सात्त्विकी राजसी चैव तामसी चेति तां शृणु ॥ १७-२ ॥

भगवान् श्री कृष्ण ने उत्तर में कहा - देहधारी जीवात्माओं की श्रद्धा तीन प्रकार की होती है - सात्त्विक, राजसिक, और तामसिक। पिछले जन्मों से प्राप्त हुए संस्कारों के अनुसार जीवात्मा में उस प्रकार की श्रद्धा प्रकाशित होती है। इस विषय पर और सुनो।

सत्त्वानुरूपा सर्वस्य श्रद्धा भवति भारत ।
श्रद्धामयोऽयं पुरुषो यो यच्छ्रद्धः स एव सः ॥ १७-३ ॥

हे भारत, अपनी प्रज्ञा के अनुसार, प्रत्येक जीवात्मा एक विशिष्ट प्रकार की श्रद्धा को विकसित करती है। वास्तव में, व्यक्ति की श्रद्धा ही उसकी पहचान है।

यजन्ते सात्त्विका देवान्यक्षरक्षांसि राजसाः ।
प्रेतान्भूतगणांश्वान्ये यजन्ते तामसा जनाः ॥ १७-४ ॥

सात्त्विक लोग देवी-देवताओं की उपासना करते हैं; राजसिक लोग यक्ष-राक्षसों की उपासना करते हैं, और जो तामसिक हैं वे भूत-प्रेतों की पूजा करते हैं।

अशास्त्रविहितं घोरं तप्यन्ते ये तपो जनाः ।
दम्भाहृङ्कारसंयुक्ताः कामरागबलान्विताः ॥ १७-५ ॥
कर्षयन्तः शरीरस्थं भूतग्राममचेतसः ।
मां चैवान्तःशरीरस्थं तान्विष्यासुरनिश्चयान् ॥ १७-६ ॥

अज्ञानी लोग, घमण्ड एवं अहमभाव के कारण ऐसी कठोर तपस्याएं करते हैं जिनका वेदों में कोई आधार नहीं पाया जाता। काम, महत्त्वाकांक्षा और सत्ता की लालच से प्रेरित होकर वे अपने शरीर को अत्यंत ही पीड़ा पहुंचाते हैं, और क्योंकि मैं उनके शरीर के भीतर स्थित हूँ, इस प्रकार से वे मुझे भी पीड़ा पहुंचाते हैं। यह जानो कि ऐसे व्यक्ति आसुरी स्वभाव के होते हैं।

~ अनुवृत्ति ~

इस अध्याय में श्री कृष्ण अर्जुन के उस प्रश्न का उत्तर देते हैं जो ऐसे लोगों के बारे में है जो वेदों के नियमों का पालन नहीं करते, किंतु श्रद्धापूर्वक पूजा करते हैं। अर्जुन जानना चाहता है कि ये लोग किस प्राकृतिक गुण से नियंत्रित हैं। यहां पर पहली शिक्षा यह दी जाती है कि यदि कोई वैदिक नियमों का अनुसरण नहीं करता तो वास्तव में वह केवल अपनी इच्छा के अनुसार आचरण करता है, हालांकि ऐसा करने से वह भौतिक गुणों (सत्त्वगुण, रजोगुण, और तमोगुण) के अधीन हो जाता है। अतः वह कभी भी पारलौकिक स्तर पर स्थित नहीं माना जाता है। तत्पश्चात् श्री कृष्ण आहार, यज्ञ, तपस्या, एवं दान का वर्णन करते हुए बताते हैं कि कैसे ये प्रकृति के तीन गुणों से प्रभावित होते हैं या उनसे जन्म लेते हैं।

सबसे पहले श्रद्धा पर चर्चा की जाती है। श्री कृष्ण अर्जुन से कहते हैं कि व्यक्ति के वर्तमान जीवन में उसके स्वभाव और उसके मन से जुड़े पिछले जन्मों के संस्कार के कारण श्रद्धा उत्पन्न होती है। जीवन की सभी गतिविधियां लगभग श्रद्धा पर ही निर्भर होते हैं। एक आस्तिक की श्रद्धा कहती है कि भगवान् हैं, और एक नास्तिक की श्रद्धा कहती है की भगवान् नहीं हैं। यदि कोई किसी सिद्धान्त का प्रस्ताव करे है और फिर यह कह दे कि उसे अपने प्रस्ताव पर ‘श्रद्धा’ नहीं है, तो यह केवल कपट कहलाता है।

श्री कृष्ण कहते हैं कि जब किसी की श्रद्धा सत्त्वगुण में होती है, तब वे देवी-देवताओं, जैसे कि गणेश, शिव, सूर्य, इन्द्र, सरस्वति इत्यादि की पूजा करते हैं। जब किसी की श्रद्धा तमोगुण में होती है, तब वे निसर्ग के सत्त्व की या पूर्वजों की पूजा करते हैं - इस वर्ग के लोगों में मानवतावादी एवं अनीश्वरवादी भी सम्मिलित हैं। जब किसी की श्रद्धा तमोगुण में होती है, वे भूत-प्रेत की पूजा करते हैं। पूजा के ये सभी प्रकार आज के संसार में प्रचलित हैं।

भारत में, बहुत लोग बड़े बड़े मन्दिर बनाकर एवं यज्ञ सके माध्यम से देवी-देवताओं की पूजा करते हैं। सुदूर-पूर्वीय देशों में, पूर्वजों की पूजा बुद्ध धर्म, शिंतो धर्म, और ताओ धर्म के अनुयायियों में अत्यंत ही लोकप्रिय है। इसी प्रकार, युरोप एवं अमेरिका में, वैज्ञानिकों, राजनेताओं, सैनिकों, फिल्मी सितारों, रोक सितारों आदि जैसे लोगों को सम्मानित करने के लिए बड़े बड़े इमारत खड़े किए जाते हैं। अफ्रीका, तिब्बत, मेकिस्को, और दक्षिण-अमेरिका में, भूत-पिशाच की पूजा लोकप्रिय है। ये सभी पूजाएं भौतिक त्रिगुणों के प्रभाव से ही किए जाते हैं। अतएव, निष्कर्ष यह निकलता है कि वेदों के नियमों की उपेक्षा करने के कारण, देवी-देवताओं, पूर्वजों, प्रसिद्ध व्यक्तियों, भूत-प्रेतों इत्यादि की पूजा पारलौकिक स्तर पर नहीं है।

भौतिक त्रिगुणों से परे होने का तात्पर्य है वेदों को स्वीकार करना और इस प्रकार विशुद्ध-सत्त्व के पारलौकिक स्तर पर स्थित होना। जब किसी की श्रद्धा विशुद्ध-सत्त्व में स्थित होती है, तब वह श्री कृष्ण की पूजा करता है। यही एक-ईश्वरवाद (यह मानना की केवल एक ही परम भगवान् है) का सर्वोच्च स्तर है। विशुद्ध-सत्त्व का शिव जी ने इस प्रकार वर्णन किया है -

सत्त्वं विशुद्धं वसुदेव शब्दितम् ।
यदीयते तत्र पुमानपावृतः ॥
सत्त्वे च तस्मिन् भगवान् वासुदेवो ।
ह्याधोक्षजो मे नमसा विधीयते ॥

श्री कृष्ण की आराधना विशुद्ध-सत्त्व में स्थित होकर किया जाना चाहिए। विशुद्ध-सत्त्व ऐसी शुद्ध-चेतना का स्तर है जिसमें 'वासुदेव' के नाम से विदित परम-सत्य, बिना किसी आच्छादन के व्यक्त होते हैं।
(श्रीमद्भागवतम् ४.३.२३)

शुद्ध चेतना के स्तर पर व्यक्ति सर्वोच्च प्रकार की श्रद्धा, 'निर्गुण-श्रद्धा' से निर्देशित होता है, जो भौतिक प्रकृति के गुणों से बिलकुल ही अदूषित होती है। वेदों का अनुसरण और धर्मनिष्ठ साधुओं की संगत करते हुए कई जन्मों के पश्चात व्यक्ति में सुकृति (पुंजित श्रेय) उत्पन्न होता है। सुकृति व्यक्ति को साधु-संग (आत्मबोध युक्त योगियों) की ओर ले जाता है, और इस प्रकार साधुओं के मार्गदर्शन से निर्गुण-श्रद्धा का विकास विभिन्न स्तरों के माध्यम से होता है, और अंततः आत्म-साक्षात्कार के सर्वोच्च स्तर - प्रेम-भक्ति तक पहुंचाता

निर्गुण-श्रद्धा एक भक्ति-योगी के हृदय में उदय होती है और उसे पारलौकिक अधोक्षज क्षेत्र में परम सत्य को देखने, सुनने, एवं अनुभव करने में सक्षम बनाती है। निर्गुण-श्रद्धा वह है जो श्री कृष्ण की अनुभूति प्राप्त कराती है, उसी तरह जैसे कि एक बिजली की चमक रात के अंधेरे में सावन के बादलों के आकार को व्यक्त करती है। रात के अंधेरे में बादलों को देखा नहीं जा सकता, लेकिन जब बिजली चमकती है, बादलों का आकार दिखाई देता है। उसी तरह, जब निर्गुण-श्रद्धा योगी के हृदय में उदय होती है, तब वे सौन्दर्य के उस अनुपम रूप को देख पाते हैं, जो श्री कृष्ण का स्वयं रूप है।

निर्गुण-श्रद्धा से मार्गदर्शित भक्ति-योगी अनुभव करते हैं कि वे श्री कृष्ण के लिए ही बने हैं, कि वे उनसे स्वतंत्र नहीं हैं। गुणातीत परम पुरुष को समझने की प्रक्रिया कुछ ऐसी होती है कि व्यक्ति को लगना चाहिए कि वह पूर्ण रूप से श्री कृष्ण पर निर्भर है।

श्री कृष्ण कहते हैं कि जो व्यक्ति काम, महत्त्वाकांक्षा, सत्ता, दंभ एवं अहंकार द्वारा प्रभावित होते हैं, प्रायः वे ऐसी धोर तपस्याएं करते हैं जो वेदों में या भक्ति-योग के विधियों में निर्धारित नहीं होती - ऐसी तपस्याएं शरीर के इन्द्रियों को शुष्क बना देती हैं। इन तपस्याओं में सम्मिलित हैं - दीर्घकालीन उपवास, अपने शरीर पर स्वयं कोड़े मारना, अपने आप को सूली पर चढ़ाना, रोमच्छद बेड़ियां पहनना, शरीर के अंगों को छेदना, तस कोयले पर नंगे पैर चलना इत्यादि। चूंकि ये तपस्याएं तमोगुण में किए जाते हैं, ये अन्तर्थित परमात्मा की अवहेलना करते हैं, और इसलिए इनसे कोई अच्छा परिणाम प्राप्त नहीं होता। श्री कृष्ण कहते हैं कि ऐसी तपस्या करनेवाले असुर हैं।

आहारस्त्वपि सर्वस्य त्रिविधो भवति प्रियः ।
यज्ञस्तपस्तथा दानं तेषां भेदमिमं शृणु ॥ १७-७ ॥

लोगों का पसंदीदा आहार और साथ साथ यज्ञ, तप एवं दान की विधियां भी तीन प्रकार की होती हैं। अब इनके बीच में जो अन्तर हैं, उन्हें सुनो।

आयुःसत्त्वबलारोग्यसुखप्रीतिविवर्धनाः ।
रस्याः स्निग्धाः स्थिरा हृद्या आहाराः सात्त्विकप्रियाः ॥ १७-८ ॥

जो आहार आयु, सत्त्व, बल, स्वास्थ्य, प्रसन्नता एवं तृप्ति को बढ़ाए, जो रसभरा, वसायुक्त, पौष्टिक एवं आकर्षक है, ऐसा आहार सात्त्विक लोगों के लिए अत्यंत ही प्रिय है।

कद्वाललवणात्युष्णातीक्ष्णरुक्षविदाहिनः ।
आहारा राजसस्येष्टा दुःखशोकामयप्रदाः ॥ १७-९ ॥

जो आहार बहुत कडवा, खट्टा, नमकीन, मसालेदार, तीखा या बहुत रुखा-सूखा हो, और जो शरीर में जलन पैदा करे, ऐसा आहार दर्द, शोक एवं रोग उत्पन्न करता है। ऐसा आहार राजसिक लोगों के लिए अत्यंत ही प्रिय है।

यातयामं गतरसं पूति पर्युषितं च यत् ।
उच्छिष्टमपि चामेध्यं भोजनं तामसप्रियम् ॥ १७-१० ॥

जो आहार बासी, नीरस, बदबूदार, सड़ा हुआ, दूसरों से फेंका हुआ, और जो यज्ञ में आहुति देने के अयोग्य है, ऐसा आहार तामसिक लोगों के लिए अत्यंत ही प्रिय है।

~ अनुवृत्ति ~

जैसा कि एक फ्रांसीसी नेता, वक़ील एवं विशेषज्ञ, जौं ओन्थेल्मा ब्रीयां-सँवरें (Jean Anthelme Brillat-Savarin) ने १९८६ मे लिखा था, "Dis-moi ce que tu manges, je te dirai ce que tu es" - मुझे यह बताओ कि आप क्या खाते हो और मैं बताता हूँ कि आप क्या हो"। दूसरे शब्दों में, आप वैसे ही हो जैसा आपका आहार है। किन्तु इस बात को आज के लोगों के मुकाबले प्राचीन समय के लोग बेहतर समझते थे। श्री कृष्ण कह रहे हैं कि आहार को तीन वर्गों में वर्गीकृत किया जाता है, और अपने अपने प्राकृतिक गुणों के अनुसार व्यक्ति को एक प्रकार का आहार अधिक प्रिय होता है।

जो आहार आयु बढ़ाए और शक्ति, बल, सेहत, प्रसन्नता, एवं संतृप्ति प्रदान करे उसे सत्त्वगुण में माना जाता है। फल, तरकारी, धान्य, चीनी, नमक, मसाले, एवं दूध के उत्पाद सत्त्वगुण में होते हैं। सामान्य तौर पर इन्हें शाकाहारी आहार कहते हैं जो सात्त्विक लोगों को प्रिय है।

श्रीमद्भगवद्गीता

जो आहार अत्यंत ही कढ़वा, खट्टा, मीठा, नमकीन, मसालेदार, तीखा या बहुत सूखा हो, जो पेट में अत्याधिक जलन पैदा करे, पीड़ा दे, वाता एवं रोग उत्पन्न करे, ऐसे आहार को रजोगुण में कहा जाता है। सम्भव है कि ऐसा आहार शाकाहारी हो सकता है किंतु इसके बावजूद सामान्य तौर पर ये अत्याधिक नमकीन और मसालेदार होते हैं। शरीर में अधिक मात्रा में नमक एवं मसाले, बलगम उत्पन्न करते हैं जिससे उच्च रक्त चाप, दिल का लक्खवा, मधुमेह, एवं कैंसर जैसी बिमारियां पैदा होती हैं। ऐसे आहार से बचके रहना ही अच्छा है।

अफलाकाक्षिभिर्यज्ञो विधिदृष्टो य इज्यते ।
यष्टव्यमेवेति मनः समाधाय स सात्त्विकः ॥ १७-११ ॥

जो यज्ञ नीजि लाभ की कामना किए बिना स्वार्थ रहित लोगों द्वारा वैदिक विधियों के अनुसार दृढ़ संकल्प से किए जाते हैं, वे यज्ञ सत्त्वगुण में होते हैं।

अभिसन्धाय तु फलंदम्भार्थमपि चैव यत् ।
इज्यते भरतश्रेष्ठ तं यज्ञं विद्धि राजसम् ॥ १७-१२ ॥

परन्तु, हे भरतश्रेष्ठ, जो यज्ञ अभिमान और स्वार्थ से किए जाते हैं उन्हें रजोगुण में समझना चाहिए।

विधिहीनमसृष्टान्न मन्त्रहीनमदक्षिणम् ।
श्रद्धाविरहितं यज्ञं तामसं परिचक्षते ॥ १७-१३ ॥

वे यज्ञ जिनमें वैदिक विधियों का पालन नहीं होत, जिनमें अन्नदान नहीं दिया जाता, जिनमें उचित मन्त्रों का उच्चारण नहीं किया जाता, और जिनमें ब्राह्मणों को दान नहीं दिया जाता - ऐसे यज्ञ श्रद्धाहीन होते हैं और इस तरह वे तमोगुण में होते हैं।

~ अनुवृत्ति ~

आत्म-साक्षात्कार को प्राप्त करने की इच्छा करने वालों के लिए वेद शास्त्रों में प्रत्येक युगों के लिए एक विशेष यज्ञ का सुझाव दिया गया है। किंतु हमें इस बात पर ध्यान देना चाहिए कि इनमें से किसी भी यज्ञ में रक्त-बलिदान नहीं होता। पशु एवं मानव बलिदान का प्रचलन प्राचीन समय से दुनिया के अनेक भागों में होता आ रहा है, किंतु इतिहास के किसी भी समय में भक्ति-योग के

पथ पर आत्म-साक्षात्कार के साधकों ने कभी भी पशु या मानव बलिदान कभी नहीं किया है।

आज के संसार में, कुछ धार्मिक पंथों में पशुओं को खाने से पहले उनका बलिदान दिया जाता है और कुछ अन्य पंथों में इसी तरह की प्रक्रिया होती है जहां पर एक संत के लहु एवं उनके शरीर का सांकेतिक प्रतिरूप का ग्रहण किया जाता है। किन्तु भक्ति-योग की साधना में इस तरह की सभी असभ्य क्रियाएं बिलकुल ही वर्जित हैं।

आधुनिक युग में, वेद-शास्त्र केवल एक प्रकार के यज्ञ का सुझाव देते हैं और वह है श्री कृष्ण-संकीर्तन जिसमें पञ्च-तत्त्व मन्त्र के पश्चात महा-मन्त्र का उच्चारण होता है -

जय श्री कृष्ण चैतन्य, प्रभु नित्यानन्द ।
जय अद्वैत गदाधर श्रीवासादि गौर-भक्त-वृन्द ॥

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ॥

महा-मन्त्र के पहले पञ्च-तत्त्व मन्त्र का उच्चारण करना चाहिए जिस के द्वारा जाने या जाने बगैर किए गए सभी पूर्व अपराधों से साधक को मुक्ति प्राप्त होती है। जब श्री कृष्ण-संकीर्तन की क्रिया श्री कृष्ण महाप्रसाद के वितरण सहित किया जाता है तब इस यज्ञ को सिद्ध एवं संपूर्ण माना जाता है। कलियुग में किसी भी अन्य यज्ञों की आवश्यकता नहीं है।

देवद्विजगुरुप्राज्ञपूजनं शौचमार्जवम् ।
ब्रह्मचर्यमहिंसा च शारीरं तप उच्यते ॥ १७-१४ ॥

भगवान्, ब्राह्मण, गुरु, एवं प्रज्ञ मनीषियों की पूजा करना, तथा स्वच्छता, निष्कपटता, ब्रह्मचर्य, एवं अहिंसा का पालन करना, समुचित शारीरिक तपस्या है।

अनुद्वेगकरं वाक्यं सत्यं प्रियहितं च यत् ।
स्वाध्यायाभ्यसनं चैव वाङ्मयं तप उच्यते ॥ १७-१५ ॥

श्रीमद्भगवद्गीता

सत्य वचन उस प्रकार व्यक्त करना जिससे कि सुननेवाले उत्तेजित न हों, जो सुनने में सुखद् एवं हितकारी हो, और वेदपाठ करना - इन्हें मौखिक तपस्या कहते हैं।

मनः प्रसादः सौम्यत्वं मौनमात्मविनिग्रहः ।
भावसंशुद्धिरित्येतत्पो मानसमुच्यते ॥ १७-१६ ॥

मन की शांति, सौम्यता, मौन, आत्मसंयम, एवं हृदय की निर्मलता को मन की तपस्या कहते हैं।

श्रद्धया परया तसं तपस्त्रिविधं नरैः ।
अफलाकाक्षिभिर्युक्तैः सात्त्विकं परिचक्षते ॥ १७-१७ ॥

इन तीन तरह की तपस्याओं को जब निषावान, निःस्वार्थ व्यक्ति दृढ़ श्रद्धा के साथ अपनाते हैं, तब उन तपस्याओं को सत्त्वगुण में कहा जाता है।

सत्कारमानपूजार्थं तपो दम्भेन चैव यत् ।
क्रियते तदिह प्रोक्तं राजसंचलमध्युवम् ॥ १७-१८ ॥

प्रतिष्ठा, नाम एवं यश कमाने के लिए अभिमान के साथ किए जाने वाली तपस्याओं को रजोगुण में कहा जाता हैं। ऐसी तपस्याओं के फल अस्थिर और अशाश्वत होते हैं।

मूढग्राहेणात्मनो यत्पीडया क्रियते तपः ।
परस्योत्सादनार्थं वा तत्त्वामसमुदाहृतम् ॥ १७-१९ ॥

मूर्खता से किए जाने वाली तपस्याएं जो न केवल स्वयं को बल्की दूसरों को भी पीड़ा पहुंचाए, ऐसी तपस्याओं को तमोगुण में कहा जाता है।

~ अनुवृत्ति ~

तपस्या का अर्थ है कि कुछ ऐसी साधना करना जिससे कि भौतिक क्रियाशीलता का क्षय हो और परम-सत्य की ओर जागरूकता को बढ़ावा मिले। इन तपस्याओं को १४, १५ एवं १६ वे श्लोकों में बताया गया है। शारीरिक तपस्याएं इस प्रकार हैं - स्वच्छता बनाए रखना, सत्यता, ब्रह्मचर्य, एवं अहिंसा। ब्रह्मचर्य का अर्थ है अवैध यौनक्रिया (विवाह संबंध के बाहर काम-क्रिया) का वर्जन।

भगवान् की पूजा करना एवं गुरु और अन्य साधुओं का सम्मान करना भी शारीरिक तपस्याएँ हैं।

जिन तपस्याओं को प्रतिष्ठा, नाम एवं चरण करने के लिए घमण्ड से किया जाता है, ऐसी तपस्याओं का त्याग करना चाहिए। इनमें राजनैतिक, सामाजिक, या आर्थिक लाभ के लिए की जाने वाली तपस्याएँ सम्मिलित हैं। मूर्खता से कीए जाने वाली तपस्याएँ जो केवल पीड़ा और दुःख देती हैं, उनका भी त्याग किया जाना चाहिए। इस प्रकार इन सभी तपस्याओं का परित्याग होना चाहिए क्योंकि ये राजसिक और तामसिक गुणों में की जाती हैं - अर्थात् इनके प्रतिफल अशाश्वत हैं और ये आत्म-साक्षात्कार की ओर नहीं ले जाती। दूसरों को दुःख न पहुंचाते हुए सत्य वचन कहना मौखिक तपस्या कहलाता है। कहते हैं कि, “सत्य दुःखदायक होता है”, किंतु यह बात भगवद्गीता के उपदेशों पर लागु नहीं होता। सत्य को उस प्रकार प्रस्तुत करना चाहिए कि वह सुनने में आकर्षक एवं मनभावन हो।

सत्यं ब्रुयात् प्रियं ब्रुयान् न ब्रुयात् सत्यम् अप्रियं ।
प्रियं च नानृतं ब्रुयाद् एष धर्मः सनातनः ॥

व्यक्ति को केवल सत्य कहना चाहिए, और उसके वचन मीठे होने चाहिए। जो सत्य कष्टदायक हो उसे न कहना ही अच्छा है, किन्तु असत्य कभी नहीं कहना चाहिए भले ही वह सुनने में कितना भी मीठा लगे - यही सनातन धर्म है। (मनु-संहिता ४.१३८)

श्री कृष्ण सभी जीवों के मित्र एवं शुभचिन्तक हैं और उनके उपदेशों को इस बात को ध्यान में रखकर ही प्रस्तुत करना चाहिए। भगवद्गीता का उपदेश निन्दात्मक नहीं है - वह केवल यह समझाता है कि क्या करना उचित है और क्या करना उचित नहीं है।

दातव्यमिति यदानं दीयतेऽनुपकारिणे ।
देशे काले च पात्रे च तदानं सात्त्विकं स्मृतम् ॥ १७-२० ॥

जो दान प्रतिफल की आशा किए बिना, उचित जगह पर, शुभ काल में, योग्य प्राप्तकर्ता को इस तरह के मनोभव से दिया जाता है कि इस दान को दिया जाना ही चाहिए, वह दान सत्त्वगुण में होता है।

यत्तु प्रत्युपकारार्थं फलमुद्दिश्य वा पुनः ।
दीयते च परिक्षिष्टं तदानं राजसं स्मृतम् ॥ १७-२१ ॥

किन्तु, जिस दान को अनिच्छापूर्वक, प्रत्युपकार की आशा एवं प्रतिफल की स्वार्थी आकांक्षा सहित दिया जाता है, वह दान रजोगुण में होता है।

अदेशकाले यदानमपात्रेभ्यश्च दीयते ।
असत्कृतमवज्ञातं तत्तामसमुदाहृतम् ॥ १७-२२ ॥

जिस दान को अनादर से, अनुचित समय एवं अनुचित जगह पर, एक अयोग्य प्राप्तकर्ता को दिया जाता है, उस दान को तमोगुण में कहा जाता है।

~ अनुवृत्ति ~

यहां पर अब दान के आदर्शों पर चर्चा हो रही है - किस प्रकार का दान, किसे और किस उद्देश्य से दिया जाना चाहिए। प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य बनता है कि वह अपने अन्य मानवी साथियों का खयाल करे। वैसे तो इस संसार में कोई भी भूखा नहीं सोना चाहिए, कोई भी कपड़ों, उचित मकान, शिक्षा, या पर्याप्त चिकित्सा सुविधा के रहित नहीं होना चाहिए। ऐसी सुव्यवस्था को मनुष्य समाज में एक आदर्श स्थिति मानी जाएगी। किन्तु आज की वास्तविक परिस्थिति बिलकुल ही अलग है - आज संसार में कई ऐसी जगह हैं जहां पर खाने का अभाव है, कपड़े का, रहने की जगह का, शिक्षा का, एवं चिकित्सा सुविधा का अभाव है, जिसके कारण करोड़ों लोग व्यर्थ ही कष्ट उठा रहे हैं। किंतु केवल चीजों के अभाव के कारण इतना कष्ट नहीं है जितना की कुशासन और जमाखोरी के कारण है। इस धरती पर सबके अच्छे सेहत और खुशहाली के लिए पर्याप्त सुविधाएं उपस्थित हैं, किंतु इन सुविधाओं का ठीक से प्रबंध नहीं हो रहा है। और दुनिया में सुविधा-संपन्न और साधनहीन लोगों के बीच हो रहे कुशासन से भी बढ़कर दोष जमाखोरी का है। मानवजाति के सामने खड़े तमाम समस्याओं को, विशेषकर भूख की समस्या को आसानी से मिटाने के लिए पर्याप्त धन उपस्थित है - किंतु इस धन को केवल थोड़े से लोग बटोरकर बैठे हैं। इन लोगों ने इतना सारा धन संचित किया है कि कोई एक व्यक्ति उस धन को एक जनम में तो क्या अगले सात जन्मों में भी खर्च न कर सकेगा। बड़े बड़े कोर्पोरेट कम्पनियों को करोड़ों डोलर सालाना बोनस मिलता है, जबकी दूसरी ओर हर साल करोड़ों बचे भूखे मरते हैं। क्या यह शर्मनाक परिस्थित नहीं है?

इस अध्याय में चर्चित अन्य विषयों की तरह दान-कार्यों के भी विभिन्न प्राकृतिक स्वभाव होते हैं जो इस बात पर निर्भर करते हैं कि दान कैसे और किसे दिया जा रहा है। जैसे कि श्री कृष्ण पिछले कुछ श्लोकों में कहते हैं, दान-कार्य सत्त्वगुण, रजोगुण या तमोगुण में होते हैं, किन्तु, अंततः सर्वोच्च दान तो वही है जो मनुष्य के सभी भौतिक क्लेशों के साथ साथ मृत्यु को भी समाप्त कर दे। इस प्रकार भगवद्गीता में पाए जाने वाले आध्यात्मिक संपत्ति का दान ही सर्वोच्च दान है। इस बात की जानकारी न होना कि हम कौन हैं, हम कहां से आए हैं, जीवन का उद्देश्य क्या है, और मृत्यु के पश्चात हम कहां जाएंगे, यही इस संसार के सभी दुःखों का मूल कारण है। जो इन बातों को भगवद्गीता के दृष्टिकोण से समझता है वह ज्ञान संपन्न है, स्वयं की शारीरिक धारणा की माया से मुक्त है, और अंत में वह मृत्यु को भी परास्त कर देता है। यही सर्वोच्च प्रकार का दान है जो कोई अपने मानवी साथियों को दे सकता है।

ॐ तत्सदिति निर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविधः स्मृतः।
ब्राह्मणास्तेन वेदाश्च यज्ञाश्च विहिताः पुरा ॥ १७-२३ ॥

वेदों में बताया गया है कि “ॐ तत् सत्” के तीन शब्द परम-सत्य को दर्शाते हैं। प्राचीन समय में, ब्राह्मण, वेद और यज्ञ की विधियां इन तीन शब्दों द्वारा उद्घव हुए थे।

तस्मादोमित्युदाहृत्य यज्ञदानतपःक्रियाः।
प्रवर्तन्ते विधानोक्ताः सततं ब्रह्मवादिनाम् ॥ १७-२४ ॥

इसलिए, जो परम-सत्य की खोज करते हैं वे यज्ञ के आरंभ में सदैव ॐ शब्द का उच्चारण करते हैं, दान देते हैं, तपस्या करते हैं, एवं वेदों में निर्धारित अन्य कार्यों का भी निर्वहन करते हैं।

तदित्यनभिसन्धाय फलं यज्ञतपःक्रियाः।
दानक्रियाश्च विविधाः क्रियन्ते मोक्षकाक्षिभिः ॥ १७-२५ ॥

मोक्ष की इच्छा करने वाले “तत्” शब्द के उच्चारण द्वारा, प्रतिफल भोगने की स्वार्थी इच्छा को त्याग करके, तरह तरह के यज्ञ, तपस्या, एवं दान-धर्म का पालन करते हैं।

सद्गावे साधुभावे च सदित्येतत्प्रयुज्यते ।
प्रशस्ते कर्मणि तथा सच्छब्दः पार्थं युज्यते ॥ १७-२६ ॥

‘सत्’ शब्द परम-सत्य के स्वभाव को एवं परम-सत्य की जिज्ञासा करने वाले साधुओं के स्वभाव को सूचित करता है। इसलिए, हे पार्थ, सभी सत्कार्यों के अंतर्गत ‘सत्’ शब्द का उच्चारण किया जाता है।

यज्ञे तपसि दाने च स्थितिः सदिति चोच्यते ।
कर्मचैव तदर्थीयं सदित्येवाभिधीयते ॥ १७-२७ ॥

यज्ञ, तपस्या, एवं दान-कार्य के निर्वहन में स्थिरता को ‘सत्’ कहा जाता है। परमेश्वर के प्रति किए जानेवाले किसी भी कार्य को ‘सत्’ कहा जाता है।

अश्रद्ध्या हुतं दत्तं तपस्तसं कृतं च यत् ।
असदित्युच्यते पार्थं न च तत्प्रेत्य नो इह ॥ १७-२८ ॥

हे पार्थ, किसी भी यज्ञ, तपस्या, दान-धर्म या किसी भी क्रिया को यदि अश्रद्धापूर्वक किया जाए, तो वह ‘असत्’ (मिथ्या) कहलाता है। इस प्रकार के कार्य, इस जन्म में तो क्या अगले जन्म में भी कोई मंगलदायक प्रतिफल उत्पन्न नहीं करते।

~ अनुवृत्ति ~

अपनी मनमानी से आचरण करने वालों को इस जन्म में तो क्या, अगले जन्म में भी सुख या सिद्धि प्राप्त नहीं होती। इसलिए हमें भगवद्गीता के आदेशों के अनुसार सभी तपस्या, यज्ञ एवं दान-कार्यों को सत्त्वगुण में करना चाहिए, क्योंकि रजोगुण और तमोगुण से व्यक्ति की चेतना कलुषित होती है।

यहां बताया गया है कि प्राचीन काल में वेदों के सभी कार्यों एवं व्यादेशों को, परम-सत्य परमपुरुष श्री कृष्ण को सूचित करने वाले ‘ॐ तत् सत्’ के शब्दों के उच्चारण सहित ही संपन्न किया जाता था। परन्तु कलियुग में इस पञ्चति का अब प्रचलन नहीं रहा। इसके विपरीत, लोग मनुष्य जीवन का वास्तविक उद्देश्य भूल चुके हैं, और शोचनीय ढंग से लक्ष्यहीन होकर अपना जीवन केवल खाने, मद्यपान करने, और मौज उड़ाने में व्यतीत कर रहे हैं।

श्री कृष्ण ने भगवद्गीता में पहले ही कहा है कि जो कुछ एक महान् व्यक्ति करते हैं, साधारण लोग भी वही करते हैं (यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः)। अतः, हम इस दुनिया के सभी भले पुरुष एवं महिलाओं से निवेदन करते हैं कि तुरंत भगवद्गीता का सन्देश का श्रवण करें और श्री कृष्ण को परम भगवान् मान लें। भगवद्गीता के ध्वज के तले दुनिया में इस तरह का आन्दोलन अवश्य मानवजाती के लिए सबसे सौभाग्यदायक एवं कल्याणकारी सिद्ध होगा। इससे बेहतर भलाई कोई कर नहीं सकता, और इसे करने के लिए प्रस्तुत समय से बेहतर और कोई समय नहीं।

एकं शास्त्रं देवकी-पुत्र-गीतम् ।
एको देवो देवकी-पुत्र एव ॥
एको मन्त्रस्तस्य नामानि यानि ।
कर्माप्येकं तस्य देवस्य सेवा ॥

भगवद्गीता ही सबसे आदर्श शास्त्र है, जिसे देवकी-पुत्र भगवान् श्री कृष्ण ने गाया था। श्री कृष्ण ही परम-सत्य हैं। जपने के लिए महामन्त्र ही सर्वोच्च मन्त्र है, और सभी का परम कर्तव्य है परम-पुरुष श्री कृष्ण की सेवा। (गीता-माहात्म्य ७)

ॐ तत्सदिति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां
वैयासिक्यां भीष्मपर्वाणि श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु
ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुनसंवादे
श्रद्धात्रयविभागयोगो नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥

ॐ तत् सत् – अतः व्यास विरचित शतसहस्र श्लोकों की श्री महाभारत ग्रन्थ के भीष्म-पर्व में पाए जाने वाले आध्यात्मिक ज्ञान का योग-शास्त्र - श्रीमद् भगवद् गीतोपनिषद् में श्री कृष्ण और अर्जुन के संवाद से लिए गए श्रद्धात्रयविभाग योग नामक सत्रहवें अध्याय की यहां पर समाप्ति होती है।

